**Sanskritik aur Samajik Anusandhan**
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852; Impact Factor: RJIF 5.44
Received: 02-01-2021; Accepted: 19-01-2021; Published: 13-02-2021
Volume 2; Issue 1; 2021; Page No. 04-06

# सूफीमत का विकास

**पवन कुमार पाण्डेय**
शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

**सारांश**
एकांत जीवन जीने वाले विरक्त सन्यासियों की जमात का पता तो अरब में भी चलता है परंतु, आध्यात्मिकता, प्रेमोन्माद और भावाविष्टा दशा को प्राप्त होने वाले सन्यासियों की जानकारी ईरान से ही प्राप्त होती है। ईरान को सूफीमत की वास्तविक जन्मस्थली कहा जाता है। सूफीमत का विकास 7वीं सदी से माना जाता है। मोहम्मद साहब के नेतृत्व में अरब धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनैतिक रूप में संगठित हुआ। मोहम्मद साहब के बाद ईरान पर अरबों का आधिपत्य हो गया। अरब शासकों ने ईरान की कला, संस्कृति, विरासत और इतिहास का क्रूर विध्वंस किया। अरबों के अत्याचार के विरुद्ध सूफी ईरानी जनता की सांस्कृतिक प्रतिरोध की आवाज बनकर उभरे। सूफी इस्लाम को स्वीकार करने के बावजूद कुरान नई व्याख्या प्रस्तुत की।उन्होंने इस्लाम को ज्यों का त्यों नहीं स्वीकार किया। और यह बात कट्टर इस्लाम समर्थकों को खटकती रहती थी। इस्लामी एकेश्वरवाद (तौहीद) को अद्वैतवादी एकात्मवाद तक पहुँचाया। और यह सब कोई एक दिन में नहीं हुआ। राबिया के माध्यम से सूफीमत में प्रेम को प्रवेश मिला और अद्वैत अपना लक्षण स्पष्ट करने लगा। वायजीद बिस्तामी के योगदान से सूफीमत के अंतर्गत फना के सिद्धांत और अद्वैतवाद का प्रतिपादन हुआ। मंसूर हल्लाज ने अनलहक (अहं ब्रह्मांस्मि) का उदघोष किया। इस्लामिक कट्टरपंथियों ने उनकी निर्मम हत्या कर दिया। उभरते हुए सूफीमत को जबर्दस्त धक्का लगा। आगे इस्लाम और सूफीमत के बीच समझौता या समन्वय का प्रयास शुरू हुआ। अलगज्जाली (मृ.1168 ई.) के प्रयास से सूफीमत और इस्लाम का समन्वय हो गया। इस्लाम और सूफीमत का झगड़ा लगभग समाप्त हो गया। अलगज्जाली के बाद सूफीमत में दो स्पष्ट विभाजन दिखता है। सूफियों का एक धड़ा कट्टरपंथी इस्लामिक मान्यताओं का समर्थक बना और दूसरा उदार और समन्वयवादी जो इस्लाम की जड़ मान्यताओं से चिपके हुए नहीं थे। आगे चलकर सूफियों के कई सम्प्रदाय बने और सूफीमत पतन की ओर अग्रसर हुआ।

**मूल शब्दः** तौहीद, सांस्कृतिक प्रतिरोध, अनलहक, समन्वय

## प्रस्तावना
सूफी चिन्ताधारा का विकास सातवीं सदी से प्रारंभ होता है। सातवीं सदी के अरब या कहें हजरत मोहम्मद के समय में अरब में विरक्त सन्यासियों का दल मौजूद था। और मोहम्मद साहब खुद 'हेरा' की गुफाओं में जाकर साधना किया करते थे और वहीं उनको दैवीय वाणी (वही) प्राप्ति हुई, जिसका संकलन आसमानी किताब 'कुरान' के रूप में हुआ। सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक–धार्मिक रूप से अराजकता के दौर में चल रहे अरब मोहम्मद साहब के नेतृत्व और व्यक्तित्व की आभामंडल तले शीघ्र संवरने लगा। लोगों के बीच गहरे अविश्वास, लूट–पाट और मार–काट की प्रवृति को 'धार्मिक भ्रातृत्व–भाव' के आधार पर खत्म किया। उन्होंने कहा– 'किसी ईमान वाले को जायज नहीं कि ईमान वाले को मार डाले' (कुरान) यह समाज के धर्म के आधार पर एकीकरण की बात थी। दूसरी महत्वपूर्ण बात थी कि उन्होंने बताया 'हर कौम को अल्लाह उसकी जबान में संदेश भेजता है और इस प्रकार कुरान तुम्हारी भाषा में भेजा गया अल्लाह की तरफ से वही (दैवीय वाणी) है।' मोहम्मद साहब के द्वारा धर्म और भाषा के आधार पर यह अरब का एकीकरण था। मोहम्मद साहब तो धर्म प्रवर्तक थे ही परन्तु इसके साथ अरब के राज्य व्यवस्थापक की भूमिका भी बखूबी निर्वहन कर रहे थे। उन्होंने अरब में समाज व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, परिवार व्यवस्था को व्यवस्थित करने का काम किया। इन सभी चीजों के अतिरिक्त उनका सदाचारी व्यक्तित्व शीघ्र ही अरब की जनता में अनुकरणीय एवं 'आर्दश पुरुष' के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। हजरत मोहम्मद के नेतृत्व में अरब शीघ्र ही एक शक्तिशाली राष्ट्र बनकर उभरा। जहाँ तक अरब में सूफीमत का प्रश्न है तो सूफियों की विशेषता– परमात्मा को पाने की आतुरता, भावाविष्टावस्था और प्रेमोन्माद जैसी प्रवृतियाँ यहाँ देखने को नहीं मिलती; यह बहुत बाद में चलकर ईरान के सूफियों में प्रतिफलित हुआ। परन्तु, कुरान और मोहम्मद साहब का व्यक्तित्व आगे के सूफियों को हमेशा निर्देशित करता रहा।

सूफी चिंताधारा की वास्तविक जन्म स्थली ईरान ही है। ईरान को उस वक्त पर्सिया कहा जाता था। अपने प्रभुत्वशाली भू–राजनैतिक अवस्थिति तथा नम्य और उदार सांस्कृतिक विशिष्ठता के बल पर ईरान ने विश्व को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। इसीलिए ईरान को "सभ्यताओं का पालना" कहा जाता है। नेल्सन रिचर्ड आयर कहते है कि ईरान का गौरव हमेशा उसकी संस्कृति रही है।

हजरत मोहम्मद साहब के पर्दा कर जाने के बाद और उनके चार खलिफाओं के अंत हो जाने पर अरब में 'उमैय्या वंश' का शासन आया। और उमैय्या काल में ईरान अरब का उपनिवेश बन गया। उमैय्या वंश के शासनकाल को इतिहासकारों ने बर्बर, क्रूर, अत्याचारी और आतंक का काल बताया, साथ ही उमैय्या शासक भोग–विलास में लिप्त रहने वाले थे। हजरत मोहम्मद साहब द्वारा स्थापित सभी व्यवस्थाएँ ध्वस्त हो गई, अराजकता का दौर आ गया। इसकी प्रतिक्रिया हुई और उमैय्या शासन को उखाड़ फेंकने और अब्बासी शासन को स्थापित करने का कूट–प्रबंध 'खुरासान' में रचा गया। खुरायान राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। जनवरी 750 ई० में उमैय्या वंश के अंतिम खलीफा मारवां को बेबीलोनियाँ में जॉब नदी के किनारे बुरी तरह अबुल अब्बास ने हरा दिया। उमैय्या वंश का एक सरदार जो इस युद्ध में बच गया वह भागकर स्पेन में उमैय्या वंश की स्थापना की अस्तु।

अब्बासी शासन में बगदाद राजधानी बन गया। उदार अब्बासी शासकों के संरक्षण में स्वतंत्र विचारों, बहस–मुबाहिसों, वैचारिक–आदान–प्रदान

को बल मिला। बसरा और कूफा सूफी संतों का अड्डा बन गया। अब्बासियों के शासन पर चन्द्रबली पाण्डेय की टिप्पणी है 'अब्बासियों की कृपा से बगदाद विधा का केन्द्र बन गया। न जाने कितने ग्रंथों के अरबी में अनुवाद किए गए। यूनान तथा भारत के मनीषी मर्मज्ञ बगदाद में आमंत्रित हुए। 'बरामका' पहले बौद्ध थे। उनके मंत्रित्व में बगदाद ने जो विधा प्रचार किया वह इस्लाम की नस–नस में भिग गया। अनुदित ग्रंथों एवं अन्य क्रिया–व्यापारों का विवरण न दें तो हम यहाँ इतना कह देना बहुत समझते हैं कि यह इस्लाम का स्वर्ण युग था।' (तसव्वुफ अथवा सूफीमत)

प्रारंभिक दौर के सूफियों पर विचार करें तो ये संसार से विरक्त होकर सादगीपूर्ण और कष्टमय जीवन व्यतीत करने में ही आत्मिक सुख और शांति का अनुभव करते थे। पवित्र जीवन पद्धति, सन्यासवृति और आध्यात्मिक साधना के लक्षण इनमें सामान्य रूप से पाए जाते हैं। इस काल में प्रमुख सूफी संत हैं – अबु हसन बसरी, इब्राहीम बिन आधम, राबिया अल अदाविया, इमाम जफर सादिक, दाउद अल्ताई, शफीक बल्खी, अबु नुमान, हबीब आजमी, अलखर्राज शिष्य हसन आदि। ये सभी संत 7वीं से 8वीं सदी के मध्य आते हैं।

प्रारंभिक दौर के सूफियों में अबु हसन बसरी, इब्राहीम बिन आधम और महिला संत राबिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अबु हसन बसरी (643 ई० – 728 ई०) पहले आध्यात्मवादी हैं जिसे सूफी साधक अपने मत का सहायक मानते हैं। इनका जन्म मदीना में हुआ था परन्तु बाद में 'बसरा' में बस जाने के कारण इनके नाम के साथ 'बसरी' जुड़ गया। हसन सन्यासवृति के साथ–साथ आत्म–संयम, चिन्तन, फकीरी तथा आंतरिक शुद्धता पर बल देते थे। वे रत्नों का व्यवसायी होते हुए भी त्यागी थे। वे कहते थे अपने हृदयों को (परमात्मा के स्मरण और चिंतन द्वारा) धो डालो क्योंकि इनमें जल्दी जंग लग जाता है; अपनी अंतरात्माओं पर अंकुश रखो क्योंकि उनमें तीव्र इच्छाएँ उठती है और अगर तुमने उनपर अंकुश नहीं रखा तो तुम्हें पतन की ओर ले जायेंगी। वह 'अनासक्ति के एक बिन्दु' को हजारों वर्षों की नमाज और रोजा से श्रेष्ठ समझते थे। 'उनमें मादन भाव का प्रसार तो न हो सका, किन्तु उसके प्रभाव से संतमत को प्रोत्साहन मिला और सूफीमत के अनेक अंग पुष्ट हुए। हसन प्रेम का पूजारी नहीं सद्भावों का विधायक था' (तसव्वुफ अथवा सूफीमत : चन्द्रबली पाण्डेय)

इब्राहीम बिन आधम (मृ० 810 ई०) बल्ख का राजकुमार था। एक अदृश्य आवाज के आदेश पर उसने सन्यास ग्रहण कर लिया। इन्होंने साधना के क्षेत्र में ज़िक्र की निरर्थकता को व्यक्त करते हुए 'चिंतन और मौन व्रत' की महत्ता को प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा– 'ऐ खुदा यदि जिक्र करते हुए तुम्हारी कृपा प्राप्त होती रहे; तुम्हारे प्यार का आश्रय मिले; तुम्हारी आज्ञाओं के पालन में सुगमता हो; तो तुम जिसे चाहो उसे स्वर्ग दे दो। मेरे लिए तो तुम जानते ही हो कि स्वर्ग का मूल्य एक मच्छड़ के पंख से अधिक नहीं है।' राबिया–अल–अदाविया (सन् 717–802 ई०) इस दौर की सुप्रसिद्ध महिला संत जिसका जन्म एक बेहद गरीब परिवार में हुआ। 'बचपन में ही दुर्भिक्ष के समय राबिया अकेली और अनाथ हो गई। वह एक धनी सेठ के यहाँ काम करने लगी। राबिया दिनभर उपवास कर सेठ का काम करती और रातभर परमात्मा के ध्यान में लीन रहती। जब सेठ को उसकी उपासना का पता चला तो उसे दासता छुट्टी मिल गई। राबिया ने कभी भी अपनी आत्मा के साथ समझौता नहीं किया – न ही वैयक्तिक जीवन में और नहीं साधना के क्षेत्र में। उन्होंने अपने शर्तों पर जीवन जिया। उसकी ईष–आराधना में न स्वर्ग की लालसा थी न नरक का भय; वह तो अपने प्रियतम के जमाल (सौंदर्य) में मग्न थी; वह तो अपने प्रियतम के अविनाशी सौंदर्य की दिवानी थी। जब साधक अपने निज का सर्वस्व न्यौछावर परमात्मा में कर दे, तो फिर वहाँ 'मैं' की जगह है कहाँ! वहाँ तो सिर्फ 'तू ही तू' है अर्थात परमेश्वर। आजीवन अविवाहिता राबिया तो अपने प्रियतम की हो चुकी है। दुनियाँ वाले तो राबिया से पुछते ही थे राबिया शादी के बारे में तुम्हारी क्या राय है? क्या तुम मुझसे प्रेम करती हो? सो एक बार स्वप्न में मोहम्मद साहब ने भी यही सवाल कर दिया। राबिया ने उत्तर दिया– "हे रसूल ऐसा कौन सा प्राणी होगा जिसे आप प्रिय न हों। पर मेरी तो दशा कुछ और है मेरे हृदय में परमेश्वर का इतना प्रसार हो गया कि उसमें उसके अतिरिक्त किसी अन्य के लिए स्थान ही नहीं है।" आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय टिप्पणी करते हैं कि "प्रेम का पुनीत परिचय, भावना का दिव्य–दर्शन, मुहम्मद की मधुर उपेक्षा, कामना का कलित– कल्लोल, वेदना का विपुल विलास आदि सभी गुण राबिया के रोम–रोम से आर्त्तनाद कर रहे हैं। उसका जीवन परमेश्वर के प्रेम से आप्लावित है। सचमुच राबिया माधूर्य–भाव की जीती जागती प्रतिमा है।" राबिया के माध्यम से सूफीमत में प्रेम को प्रवेश मिला और अद्वैत अपना लक्षण स्पष्ट कर रहा था।

सूफीमत के दूसरे चरण में जिसका काल 8वीं सदी से 10वीं सदी तक माना जाता है, में रहस्यवाद और प्रेमोन्माद एक विशिष्ठ प्रवृति के रूप में उभरकर सामने आयी। इसी दौर में सूफीमत के तत्वान्वेषण, दर्शन और सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया आगे बढ़ी। इस्लाम प्रतिपादित मान्यताओं को चुनौती मिली और तसव्वुफ प्रतिष्ठित हुआ। इस दौर के उल्लेखनीय सूफी संत मारूफ अल करखी (मृ० सन् 815 ई०), अबु सुलेमान दरानी (मृ० सन् 830 ई०), जून–नून मिस्री (मृ० सन् 860 ई०), वायजीद विस्तामी (मृ० सन् 875 ई०), जुनैद (मृ० सन् 866 ई०), मंसूर हल्लाज (मृ० सन् 932 ई०) आदि हैं। मारूफ अल करखी एक ज्ञानी संत थे, जिनमें रहस्यवादी प्रवृतियाँ पाई जाती है। उनका कहना था कि परमात्मा से प्रेम व्यक्ति विशेष की शिक्षा से नहीं आती, यह तो परमात्मा की कृपा से ही संभव है। 'करखी ने त्याग, तत्व एवं प्रेम का उद्बोधन कर सूफीमत के प्रज्ञात्मक रूप का निर्देश कर दिया।

अबु सुलेमान दरानी (मृ० सन् 830 ई०) ने मारिफ़त (परम ज्ञान) के सिद्धांत पर प्रकाश डाला। इन्होंने कहा कि जब ज्ञानी के ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं तब उसकी दैहिक आंखें बंद हो जाती है। उन्होंने परमात्मा के प्रति 'सहज प्रेमार्द्र–भाव' को हृदय का अलंकार बताया।

जून–नून मिस्री (मृ० सन् 860 ई०) अपने स्वतंत्र विचारों की वजह से अपमानित हुए और जिन्दीक (बे–ईमान काफ़िर) कहलाते रहे। उसने 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) की नवीन व्याख्या की और कहा कि सिर्फ अन्य देवी–देवताओं के निषेध मात्र से खुदा का एकत्व सिद्ध नहीं होता। जब साधक उसके (परमात्मा) के प्रेम में इतना लीन हो जाय कि उसके अतिरिक्त कुछ शेष ही न रहे, तभी तौहीद की सार्थकता है। इन्होंने ज्ञान और प्रज्ञान के भेद को स्पष्ट करते हुए, प्रेम को प्रज्ञात्मक सिद्ध किया। राबिया ने जिस प्रेम का आनंद उठाया, जून–नून ने उसका निदर्शन कर दिया और मारिफ़त का सम्बंध खुदा के प्रेम से जोड़ दिया। अब्बासी खलीफा मुतवक्किल के समय इन्हें धर्मविरोधी होने के संदेह में जेल में डाल दिया गया। बाद में इनके वाकपटुता से मुग्ध होकर इन्हें छोड़ दिया। अबु यजीद विस्तामी अथवा वायजीद (मृ० सन् 875 ई०) के पितामह शरषासन जरथुस्त्री धर्म के अनुयायी थे। वायजीद ने अबु अली नामक सूफी संत से दीक्षा ली। अबु अली बौद्ध धर्म से प्रभावित थे। विस्तामी सूफीमत के अंतर्गत फ़ना के सिद्धांत और अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उन्होंने अहं के विसर्जन (फ़ना) को स्पष्ट करते हुए कहा कि 'सांप जिस प्रकार से केंचुल छोड़ता है उसी प्रकार से मैंने अपने अहं को छोड़कर अपनी ओर देखा तो पाया कि मैं और वह एक ही है।' अब फ़ना हो चुके साधक और परमात्मा में कोई फर्क तो रह जाता नहीं, इसलिए वे साकी, शराब, शराबी का रूपक देते हुए अद्वैत का रूपक खींचते हैं– 'मैं ही शराबी, मैं ही शराब और मैं ही साकी हूँ।' ठीक इसी तरह आगे कहते हैं 'प्रेमी, प्रेमिका और प्रेम एक ही है, क्योंकि एकत्व की दुनियाँ में सभी एक हो सकते हैं।' चन्द्रबली पाण्डेय कहते हैं 'करखी ने जिस प्रेम और सूरा का संकेत किया था। उसको यजीद ने भड़का दिया। विरही तड़प उठे और प्रेम का प्याला चल पड़ा। यजीद ने सिद्ध कर दिया कि प्रेम की दशा में वाहय कृत्यों का कुछ महत्व

नहीं। उसने फ़ना का प्रतिपादन कर सूफीमत में आर्य संस्कारों को भर दिया और भविष्य के सूफियों के लिए अद्वैत का मार्ग खोल दिया।' वायजीद के बाद सूफीमत के मर्मज्ञ और इस्लाम के ज्ञाता जुनैद हुए। ये मंसूर हल्लाज के गुरु थे। और इनका मुल्ला और फकीर दोनों आदर करते थे। जब मंसूर हल्लाज को शूली पर चढ़ाया जा रहा था, तब ये बचे रहे क्योंकि ये तसव्वुफ के गुहय विधा का गुप्त प्रचार करते थे और बाहर से कट्टर मुस्लिम बने रहते थे। इनका कहना था कि हल्लाज और इनके मतों में कोई भिन्नता न थी। हल्लाज का दोष सिर्फ इतना था कि वह अपने सत्य का उद्घोषक बन गया था। हल्लाज (मृ० सन् 932 ई०) जो मंसूर के नाम से ज्यादा लोकप्रिय हुआ उसने कहा कि 'यद्यपि मैं मार डाला जाउं, शूली पर चढ़ा दिया, मेरे हाथ–पैर काट दिए जाएँ किन्तु अपने सिद्धांत से नहीं हटूँगा।' हल्लाज को अपने अंजाम का पता था परन्तु उन्होंने भय को जीत लिया और सत्य के उद्घोषक बन गए। उनके मौत और शूली पर चढ़ाए जाने का लोमहर्षक चित्र अत्तार ने खींचा। मरते दम तक उसके जिहवा से 'अनहक' की रट न छुटी और मौत को सामने देख भी भय कहीं था नहीं।

हल्लाज ने कहा कि 'मैं वही हूँ जिसको प्यार करता हूँ, जिसे प्यार करता हूँ मैं वही हूँ। हम एक शरीर में दो प्राण हैं, यदि तू मुझे देखता है तो उसे देखता है और यदि उसे देखता है तो हमदोनों को देखता है।' हल्लाज का यह मत शामी एकेश्वरवाद के विपरीत था। वहाँ तो 'उसके (परमात्मा) के जैसा कोई नहीं' (कुरान) हो सकता था। इस्लाम ने तो इंसान और अल्लाह के बीच द्वैत का विधान किया था, हल्लाज ने उसे मिटा दिया था। हल्लाज ने कुरान प्रतिपादित शैतान इब्लीस और मूसा विरोधी मिस्र के राजा फरोह को अपना मित्र एवं शिक्षक बना लिया। कट्टरपंथी इस्लाम समर्थकों को यह कहाँ पचनेवाला था। इस्लाम के खलपात्र हल्लाज की शक्ति और प्रेरणा के स्रोत बन गए। दरअसल यह दो संस्कृतियों की टकराहट थी। इसके अतिरिक्त तसव्वुफ में हुलूल (अवतारवाद) और लोक' लाहूत और नासूत (देव लोक, मर्त्य लोक) को प्रतिपादित किया। हल्लाज का 'अनलहक' तसव्वुफ में वेदांत के 'अहम ब्रहमोडिस्म' की घोषणा थी। चन्द्रबली पाण्डेय कहते हैं 'सूफीमत का शिरोमणि, तसव्वुफ का प्राण, अद्वैत का आधार, शहीदों का आदर्श सचमुच हल्लाज ही था। मंसूर का अनलहक सूफीमत की पराकाष्ठा ही नहीं परमगति भी है।'

हल्लाज की निर्मम हत्या के बाद उभरते हुए सूफीमत को जबर्दस्त धक्का लगा। शासक वर्ग अब उदार नहीं रहे। कट्टर उलेमाओं की बादशाह तक पहुँच थी। सूफियों को हमेशा प्राणदण्ड का खटका लगा रहता था। इस्लाम समर्थकों के पास कुरान का शक्तिशाली आधार था। सूफियों को भी अपने दर्शन व सिद्धांत को व्यवस्थित करने की आवश्यकता महसूस हुई। इस्लाम मतानुयायी भी अपने प्रचार कार्य के दौरान नए मानव–समुदाय के सम्पर्क में आ रहे थे, जिनकी चिंताधारा और उपलब्धियाँ इस्लाम से प्राचीन थी और गहरे जड़ जमाई हुई थी। इन मानव–समूहों को सिर्फ कुरान की आयतों के बल पर नहीं समझाया जा सकता था। अब तक कुरान की भी कोई दार्शनिक विचार पद्धति विकसित न हो पाई थी। नए धार्मिक– सामाजिक–सांस्कृतिक समूह में कुरान को अधिक स्वीकार योग्य बनाने हेतू उसे तर्कसम्मत और प्रमाणाश्रित भी होना आवश्यक था; सिर्फ आसमानी किताब कह देने से बात नहीं बन रही थी। यहीं कुरान को दर्शन की आवश्यकता पड़ी।

इधर सूफी संत घूम–घूम कर प्रेम का संदेश जन सामान्य तक पहुँचा रहे थे और इन पर अपना प्रभाव भी छोड़ते जा रहे थे। धीरे–धीरे प्रभावित जनों का समूह बनता जा रहा था और फिर इन प्रभावित जनों को जमा करके दीक्षा देने की परम्परा ने जोड़ पकड़ा। खानकाहों के नाम पर सूफीमत के केन्द्र बनने लगे। 'समा' और 'पीर परस्ती' की ओर लोग खिंचे चले आ रहे थे। और जनता में सूफियों को लेकर काफी सम्मान था। अबु सईद ने तो (मृ० सन् 1106 ई०) पीरों की समाधि को ही हज माना और हज यात्रा की अवहेलना की। 'सूफी जनता का मन मोहने में सफल हो रहे थे, उनका संघटन भी हो गया था, उनकी पूजा भी चल पड़ी थी, उनके मठ भी बन गए थे, सब कुछ उनके पक्ष में था तो सही, परन्तु उनको प्राणदंड का खटका भी लगा रहता था। किसी भी समय जिन्दीक की उपाधि दे उनकी दुगर्ति की जा सकती थी।' सूफी तो बेताज बादशाह थे जिनका जनता की दिलों पर राज था। पर जिनके सर पर ताज था, उनका जनता के दिलों पर राज नहीं था। इस्लाम के अनुयायियों को अब तक समझ में आ गया था कि 'फतवा और तलवार' के बदौलत यह काम पूर्ण नहीं होगा। और सूफीमत को भी इस्लाम की सनद की आवश्यक थी। फलतः दोनों पक्ष एक–दूसरे की तरफ झुके और 'समन्वय' की पहल शुरू हुई।

इस्लाम और तसव्वुफ के समन्वय के दार्शनिक और सैद्धांतिक पहल की शुरुआत सूफियों की ओर से चल पड़ी। इस क्रम में अबुबकर कलाबाधी (मृ० सन् 1000 ई०) का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने 'किताबुल–तार्रुफ–मजहबे–तसव्वुफ' लिखकर यह साबित किया कि 'इस्लाम अक्षरशः अल–फ़िकह–अल–अकबर' पंथ का केवल रूपांतरण है और सभी महान सूफियों ने इस पंथ को अपनाया है। अल–फ़िकह–अल–अकबर का अर्थ हुआ 'सर्वशक्तिमान परमात्मा का पहचान करानेवाला ज्ञान' (जय बहादुर लाल : सूफी संत साहित्य का उद्भव और विकास) कलाबाधी की उपरोक्त रचना को कट्टरपंथी इस्लाम ने भी मान्यता दी। इस दौर के कई अन्य सूफी संतों का प्रयास समन्वय की ओर जारी रहा, परन्तु यह कार्य अल–गजाली (मृ० सन् 1168 ई०) के हाथों सम्पन्न हुआ। 'समन्वय की भव्य भावना ने इमाम गजाली को जन्म दिया। इस्लाम उसकी प्रतिभा से चमक उठा। गजाली इस्लाम का व्यास है। उसने धर्म, दर्शन, समाज और मुक्त भावना का समन्वय कर इस्लाम को परितः पुष्ट किया। उसने इस्लाम को ईमान की क्रिया साबित कर दोनों का उपसंहार दीन में कर दिया।' अलगजाली परमात्मा के साक्षात्कार के समय की साधना पद्धति पर बहस या तर्क–वितर्क को निरर्थक मानते थे। उन्हें हुज्जत–उल– इस्लाम (इस्लाम का प्रमाण) की उपाधि से विमुक्ति किया गया और उनकी पुस्तक 'आहिया बिन उलूम' को दूसरा कुरान का दर्जा मिला। तसव्वुफ और इस्लाम के समन्वय उपरांत सूफी संत 'काव्य–कर्म' की ओर मुड़ गए। और सूफीमत कई महान सूफी कवियों को जन्म दिया जिसमें रूमी, जिली उमर खैय्याम और अरबी आदि का नाम प्रसिद्ध है।

अलगजाली के बाद सूफीमत के अंदर दो स्पष्ट विभाजन दिखने लगा। सूफियों का एक वर्ग जो खुद को अलगजाली की परम्परा में मानते थे, वे तसव्वुफ को कुरान और हदीस की परिधि से बाहर जाने देना नहीं चाहते थे। दूसरा वर्ग उन सूफी संतों का था जो खुद को मंसूर हल्लाज की परम्परा में देखते थे। ये सूफी उदार, सहिष्णु, सर्व समावेशी तथा सर्वधर्म सभाव को लेकर चलने वाले थे; भारतीय सूफी–चिन्तनधारा का सम्बंध इन्हीं सूफियों से है। आगे चलकर सूफियों के कई सम्प्रदाय बन गए। और सूफीमत पतन की ओर अग्रसर हुआ।

## संदर्भ


1. सूफीमत–साधना और साहित्य–रामपूजन तिवारी, ज्ञानमंडल प्रकाशन
2. सूफी संत साहित्य का उद्भव और विकास –जयबहादूर लाल, नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ
3. तसव्वुफ अथवा सूफीमत –आचार्य चन्द्रबली पांडेय